



मनुष्यविज्ञान



त०

शरण

Handwritten signatures and scribbles

वा०
२०

शुभ संकल्प



क्षमा,

प्रेम,

निरकाम कर्म,

ब्रह्म

पालन

लाल फकीरचन्दजी महाराज
नवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)



R. S.
ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदं: पूर्णात्पूर्णमदुच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णं मेवावशिष्यते ॥



मनुष्य बनो

वर्ष ४०

सितम्बर १९९१

अङ्क—१२

शब्द

भाग सोया जाग उठा है. गुरु की कृपा हो गई।
काल का भय अब नहीं जब, उसकी रक्षा हो गई ॥१॥
नाम पाया भक्ति का धन, पाया मन में हूँ सुखी।
सुख मिला संकट कटा, अब छाया माया हो गई ॥२॥
ध्यान और सुमिरन भजन, करने जो बेटा शान्त हो।
शब्द परगट हो गया, ज्योति की वर्षा हो गई ॥३॥
वर मिले भक्ति का बल का, दान दो शक्ति मिले।
मेरे सिर पर आपके, चरणों की छाया हो गई ॥४॥
धन्य सतगुरु राधास्वामी, धन्य महिमा आपकी।
इस अधम पर आपकी, अब सच्ची दया हो गई ॥५॥

निवेदन

कागज के मूल्य में लगातार हुई तेजी के कारण हमें मजबूर
होकर पत्रिका का वार्षिक मूल्य २५) २० करना पड़
रहा है। पाठक गण आगे से इसका वार्षिक
शुल्क २५) २० ही भेजें।

— व्यवस्थापक



सम्पादकीय :—

प्रिय पाठक गण, आपकी सेवा में चालीसवें वर्ष का आखिरी अंक आपके हाथ में है। यह वर्ष मनुष्य बनो पत्रिका के लिए सबसे ज्यादा नुकसानमय रहा। चूँकि इस वर्ष हमें यह पत्रिका (७०००) रु. का घाटा सहकर निकालनी पड़ी है। हमें चूँकि गुरु की ऐसी आज्ञा थी कि जहाँ तक हो सके इस पत्रिका को चलाते रहना। तः इसे अपना कर्तव्य समझकर आपकी सेवा कर रहे हैं। हम समझते हैं कि आप सभी भाई हमें थोड़ा सहयोग करें व इसका वार्षिक शुल्क समय से भिजवाने के साथ-साथ इसके ग्राहक बढ़ाने में हमारी मदद करें तो संभव है इसके होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है।

आपको यह जान कर खुशी होगी कि गत माह अलीगढ़ विश्व विद्यालय के उर्दू विभाग ने दाता दयाल महर्षि शिवब्रत लाल वर्मन जी महाराज की पुस्तकों के ऊपर एक सैमीनार का आयोजन किया, जिसके मुख्य अतिथि हज़ूर मानव दयाल जी महाराज थे। इस सम्मेलन में दूर-दूर से लोग भाग लेने आये थे। और महर्षि जी की पुस्तकों के उपर अपने विचार प्रगट किए एव उनकी लिखी गई रामायण के ऊपर विशेष चर्चा हुई।

महर्षि जी की अलौकिक विद्वानता का पता इसी बात से मिलता है कि उन्होंने किस प्रकार रामायण को शरीर के अंगों पर उतार दिया और वास्तविकता का परिचय करा दिया कि राम और रावण का युद्ध क्या है? राम वास्तव में ज्ञान का नाम है और रावण अज्ञान का, यही कारण है कि राम और रावण का युद्ध हमेशा होता रहा है और विजय भी राम की अर्थात् ज्ञान ही की हुई।

यह सैमीनार टेलीवीजन पर उर्दू प्रोग्राम में भी दिखाया गया।

इस सबके साथ ही मैं एक बार आपसे पुनः आग्रह करना चाहना हूँ कि यदि आप, फकीर साहब, दातादयाल जी महाराज व हज़ूर मानव दयाल जी महाराज के प्रवचनों को घर बैठे ही पढ़ना चाहते हैं तो इस पत्रिका को आर्थिक सहायता के साथ-साथ इसके ग्राहक बनाने में भी हमारी सहायता करें।

महेशचन्द्र



राधा स्वामी दयाल की दया
राधा स्वामी सहाय

“बुढ़ापा”

(लेखक—श्री हुजूर महाराज दीवान चन्द जी)

प्रेमी पाठकों ! मैं इस लेख में इन्सानी जिन्दगी की आखिरी मन्जिल जिसे बुढ़ापा कहते हैं, उस पर अपने विचार और तजुर्बा आपके सामने पेश कर रहा हूँ। बुढ़ापा एक ऐसा शब्द है जिसको कोई भी सुनना पसन्द नहीं करता। जवान तो खैर इस शब्द के पास भी फटकना नहीं चाहता। मगर, बूढ़े भी इसको सुनकर उदास हो जाते हैं। क्या ये शब्द असलियत में ऐसा ही भयानक है कि इसे सुनकर जो नक्शा हर इन्सान के सामने आता है, वह उसके ख्यालों और दिल को कमजोर कर देता है। बुढ़ापा बशर्ते खुद इतनी बुरी चीज नहीं है चूँकि हर तरफ इसका शिकवा शिकायत है, इसलिए सब इस हासत से डरते ही हैं। इस गलती ने हमारे दिलों पर ऐसा सिक्का बैठा दिया है कि हमने इसे लानत समझ लिया है। अगर ऐसी बात होती तो इन्सानी जिन्दगी, जिसके लिए वेद में “जीवेम शर्दःशतम्” यानि हम सौ साल तक जिन्दा रहें की प्रार्थना क्यों की गई होती। जीवन में चौथा पद तो बुढ़ापा ही है मेरे ख्याल में जिस ऋषि ने यह मन्त्र उच्चारण किया होगा उसको इस बात का भली प्रकार ज्ञान होगा कि ये अवस्था यानि बुढ़ापा आयगा और जरूर आएगा।

ये बुढ़ापा आज की समस्या नहीं है, जिस दिन से सृष्टि पैद हुई, तब से ही बुढ़ापे का भी आरम्भ हुआ। बुढ़ापा केवल इन्सान के लिए ही नहीं जानदार और बेजान सब ही के लिए है। जानव



बूढ़े होते हैं, मफान बूढ़े होकर गिर जाते हैं। यहाँ तक कि सारे जगत का लय प्रलय होता रहता है। बारी-बारी सब अपना काम पूरा करके असलियत की तरफ से जानकार हो जाते हैं।

चूँकि बुढ़ापा और बुढ़ापे के निशान शुरू से मौजूद थे, इसलिए प्राचीन वैदिक ऋषियों और विचारकों ने इस पर विचार करना शुरू किया। उनके विचार में बुढ़ापा इन्सानी जिन्दगी के विकास (Evolution) का एक अंग है। पैदाइश से लेकर मौत तक इन्सान असलियत की विभिन्न हालतों से गुजरता रहता है, चुनाव जिन्दगी के चार पदार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को ध्यान में रखकर उस समय की सौ साला जिन्दगी को चार हिस्सों में बाँट दिया और अब मौजूदा औसत जिन्दगी को इसी औसत में बाँट लिया जाय :

१ धर्म :—मानव जीवन के पहले वर्ष यानि चौथाई हिस्से में २५ वर्ष तक के जीवन काल को ब्रह्मचर्य आश्रम का नाम दिया गया। इसमें बचपन से लेकर २५ साल की उम्र तक के नियम बनाए गए। जीव जन्म से अज्ञानी होता है। इस संसार में आने के पश्चात सबसे पहले इसको इस संसार और संसार के पदार्थ जिनका सूक्ष्म रूप इसके अन्दर मौजूद है, उनका ज्ञान पैदा कराने की जरूरत महसूस हुई। इस उम्र में गुरु की सेवा से भौतिक और आत्मिक दोनों तरह का ज्ञान सीखने की हिदायत हुई। इस असे में उसका शरीर, इन्द्रियाँ आँसू और बुद्धि धीरे-धीरे तरक्की कर जाती हैं। और इसके साथ ही ब्रह्मचर्य आश्रम का जमाना खत्म हो जाता है। इसी ही अवस्था में 'धर्म' का बीजारोपण कर दिया जाता है।

२ अर्थ :—इसके बाद जीवन के २५ साल का दूसरा दौर (वर्ष) शुरू हो जाता है जिसे गृहस्थ आश्रम कहते हैं। ये भरपूर ज्ञानी का जमाना है। इस समय शरीर और इन्द्रियाँ ताकतवर



और शहजोर होती हैं। इनको काबू में रखना कठिन होता है। इस ऊम्र में शादी करके संतान पैदा करना जरूरी है, जिससे सामाजिक जीवन ठीक चल सके और साथ ही घर गृहस्थ की जिम्मेदारियाँ निभाने के लिए व्यवसाय या कारोबार करना और धर्म के साथ अर्थ प्राप्त करना भी जरूरी फर्ज करार दिया गया। इस युग में मनुष्य इन्द्री तृप्ती का यत्न करता रहता है। इसी ही अवस्था में 'धर्म सहित अर्थ' का सञ्चय किया जाता है।

३ काम : इन्सानी जीवन का तीसरा युग (पर्व) ५० से ७५ साल की उम्र तक वानप्रस्थ यानि वन को प्रस्थान करना शुरू होता है, अब दुनियाँ और भोग से अलग होकर वन में रहकर जीवन बिताना—वान-प्रस्थ आश्रम कहलाता है। इस समय में ज्ञानी-ऋषियों-साधु-सन्यासियों के सम्पर्क में रहकर कामनाओं का दमन कर आत्म विचार करना है। देण और जनता की भलाई के प्लान (नियम) बनाना, उस पर अमल करना कराना और समाज सेवा करना था। जिससे मन निर्मल हो जाय। दिल में से नफरत और द्वेष दूर हो जायें और मन में केवल आत्म साक्षात्कार करने की ही कामना मुख्य रूप से रह जाये।

४ मोक्ष :— इसी प्रकार चौथे पर्व यानि ७५ से १०० साल तक की ऊम्र, जिसे हम बुढ़ापा कहते हैं सन्यास आश्रम कहलाता था। इस समय तमाम दुनियावी सम्बन्ध धर्म-कर्म सब बन्दिशों से आजाद होकर मनुष्य को ब्रह्म में लीन होकर रमण करना था। ये जीवन मुक्ति का जमाना था—सिर्फ ब्रह्म में विचर कर आखिरी साँस तक पहाड़ों और जंगलों में कुदरत के दूषणों के साथ खेलते हुए जीवन बसर करना था। इस आश्रम में सन्यासी अपना गैर-कुदरती जीवन छोड़कर अपने आपको कुदरत के हवाले कर देता है। वही उसकी रक्षा करती है।



ऊपर के हवालों से यह बताना था कि इन्सान बचपन से तरक्की करना हुआ बुढ़ापे में प्रवेश करता है, जो तरक्की की आखिरी मंजिल है। इसलिए बुढ़ापे को डरावना समझना सरासर गलती है। अगर जीवन के इन चारों हिस्सों को ठीक-ठीक समझ कर गुरु के आदेशोपदेश को अमल में लाया जाए तो मेरे स्थाल में यह बुढ़ापा इतना भयानक, डरावना और खतरनाक मालूम न हो, जितना कि इसको कवियों और लेखकों ने बयान किया। एक कवि ने तो यहाँ तक लिख दिया है—

“जान से बढ़कर जवानी जाएगी,

मौत से बढ़कर बुढ़ापा आएगा।”

गोया बुढ़ापे को मौत से भी बुरी हालत बताया है। जवानी से बुरी तो शायद किसी हालत में कहा जा सके, लेकिन मौत से भी बुरा बयान करना समझ में नहीं आता। हर नतीजे का कोई सबब या वजह जरूर होती है, इसलिए बुढ़ापे का जो इतना घिनावना नक्शा पेश किया जाता है वह हमें सोचने पर मजबूर करता है कि इसकी वजह क्या है? ये उन लोगों का दृष्टिकोण मालूम होता है जो जीवन को केवल भोग विलास के लिये समझते हैं। दिन-रात अन्धा-धुन्ध भोग-विलास, शरीर और इन्द्रियों के ओज को निघोड़ कर, उन्हें खोखला कर देता है फिर शरीर में अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। हर अंग में दर्द, टीस, चलने-फिरने, देखने और सुनने में कमजोरी, हाजमा कमजोर, मिजाज में चिड़चिड़ापन और वही जवानी की हविश, मौत, प्रार्थना करने पर भी नहीं आती। ऐसे लोगों के लिए बुढ़ापा मौत से बदतर हो सकता है। मगर जो जीवन के उद्देश्य को गुरु से समझ कर अपनी आयु व्यतीत करता है उसके लिए ऊपर की कहावत बिल्कुल गलत है। मेरी आयु इस समय ७४ वर्ष की है, मतलब यह है कि मैं इस समय भरपूर बुढ़ापे में हूँ, मगर मेरी



जिन्दगी की रूप-रेखा वह नहीं जो लोगों ने बुढ़ापे का नक्शा बयान किया है। बूँक मैं इस तजुबे से गुजर रहा हूँ इसलिए जो कुछ मैं लिख रहा हूँ—जाती तजुबे के आधार पर ही लिख रहा हूँ (Self experience is the best teacher)। मेरे छयाल में बुढ़ापे के दुःख की जड़ जवानी में है। अगर जवानी को किसी ने ठीक प्रयोग किया तो उसको बुढ़ापे की हालत से घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं। और न ही उसका बुढ़ापा इतना खराब होगा जितना कि आम लोग अनसमझी से उसे बयान करते हैं। यह तो मामूली समझ की बात है कि किसी तरह का भी धन हो वह जवानी में ही इकट्टा किया जा सकता है और हम लोग तब ही करते हैं, जब दिन अच्छे होते हैं और हालात भी अनुकूल होते हैं, उस समय सांसारिक चीजों को जमा करने की कोशिश करते हैं जिससे वे बुढ़ापे में काम आ सके। चाहे नौकरी में हों, चाहे व्यापार में हों, जवानी में कुछ न कुछ बचाते ही रहते हैं जिससे समय पर काम आ सके और बुढ़ापे में पराधीन न होना पड़े। भाई पराधीनता जैसा और कोई दुःख नहीं। जिस तरह हम यह इकट्ठा करते हैं, मकान वर्ग रह बनवाते हैं उसी तरह अगर किसी तजुबेकार बुजुर्ग से लाभ उठा कर अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का जवानी में ठीक प्रयोग करना सीख लें तो हो सकता है कि बुढ़ापा इतनी भयानक हालत इख्तियार न कर सके, जितना कि हम सोचते हैं। लेकिन हम तो अपनी जहालत को छुपाने के लिए “जवानो मस्तानी” कह कर अपना पीछा छुड़ा लेते हैं। लेकिन याद रखो कि तुम दूसरों को धोखा दे सकते हो, कुदरत को धोखा नहीं दिया जा सकता।

‘लोक पतीने कछु ना होवे, ना ही राम आयाणा।’

अगर हम कुदरती असूल के खिलाफ चलेंगे तो कुदरत हमें हरगिज माफ नहीं करेगी। वो मैं इस बात को मानता हूँ कि बुढ़ापे



में शरीर के अंग कमजोर हो जाते हैं शरीर ढीला पड़ जाता है दर्द उठती रहती हैं मगर साफ ही इस नुकते को साफ-साफ बताये देता हूँ कि शारीरिक कमजोरी से दिल की कमजोरी ज्यादा दुखदायी होती है। मेरा मतलब है कि आमतौर पर बुढ़ापे में शारीरिक से मानसिक दुःख अधिक होता है। मनुष्य बुढ़ापे में भी अपने आपको जवान समझ कर इस शरीर में स्थित इन्द्रियों से वही इच्छायें पूरी करना चाहता है, जिसके योग्य उसका शरीर या इन्द्रियाँ नहीं होतीं। वह वही आनन्द भोगना चाहता है जो वह जवानी में भोगता था, लेकिन तुम्हारे इन विचारों से कि मैं बूढ़ा नहीं हूँ न तो बुढ़ापा टल सकता है और ना ही जवानी की हालत नसीब हो सकती है। कबूतर के आँख बन्द करने से बिल्ली दूर नहीं हो जाती। जब मनुष्य को बुढ़ापे में जवानी के भोग पदार्थ नहीं मिलते, तो उसका मन चंचल हो उठता है जिसका परिणाम क्रोध चिड़चिड़ापन हरेक से लड़ाई, बातों में फीकापन आदि रूपों में प्रकट होता है। वह दूसरों को अनजान और मूर्ख समझता है। जवानी की जमा हुई बुराइयाँ मन को तंग करती हैं, इच्छाओं के हिलोर उठते हैं तरंगे उछलती हैं, लहर पर लहर आती है और बाहर से जब ऊनकी पूर्ति नहीं होती तो उसको वे बुढ़ापे का रोग समझकर, बुढ़ापे को बदनाम करते हैं और अपनी गलती को छुपाना चाहते हैं। इसलिए जैसा कि मैं पहले लिख आया हूँ जवानी में शारीरिक और मानसिक ब्रह्मचर्च की सख्त जरूरत है और यह तभी हो सकता है जब भोजन तथा विचारों पर काबू पाया जाए।

नतीजा

विचार :—“जैसा ख्याल घंसा हाल-जैसा हाल वैसा माल”
हर मनुष्य का साँसार उसके अपने विचारों का समूह है। ईश्वर की



बनाई हुई सृष्टि बिल्कुल दुःखदायी नहीं बल्कि सुःख और आनन्द भरपूर है, दुःखदायी तो हर मनुष्य की अपनी बनाई हुई दुनिया जो उसने अपने विचारों और मोह से अपने चारों ओर रच रखी है और उसी की हमें हर स्थान पर शिकायत है। हर मनुष्य को अभी इस नुकते (रहस्य) को समझने में देरी लगेगी जल्दी समझ में भी कैसे आए बात बहुत ही बारीक है मगर पते की। अंग्रेजी की कहावत है- **As you think so shall you become** (तुम जैसे विचार अपनाओगे वैसे बन जाओगे) इस बात को वही मनुष्य समझ सकता है जो सुरत शब्द अभ्यासी है अर्थात् अन्तर्मुखी है। सुरत ही तो ख्याल या तवज्जह है। जहाँ, जिस मंडल पर, जिस स्थान पर, हमारी सुरत या ख्याल टिका हुआ है-बस हम उसी का रूप हैं और वही हमारा इष्ट है जो हम (हरदम) सोचते रहते हैं वही प्राप्त होता है-हम वैसे ही बन जाते हैं। ख्याल की शक्ति का अनुभव हर मनुष्य को स्वप्न अवस्था में भली प्रकार होता है। हम अपने विचारों की शक्ति से मुर्दा मां बाप को जिन्दा करके सामने प्रकट कर लेते हैं, ऊनसे बातचीत करते हैं नई-नई तरह की दुनियां बसाते और बिगाड़ते हैं। जागृत अवस्था में भी हम जब किसी खास ख्याल में डूब जाते हैं, तो उस समय, उसके सिवा सारा संसार लुप्त हो जाता है। और उसी विचार की मूर्त्त सामने रह जाती है।

योग वसिष्ठ में एक कथा है कि ब्रह्मा के चार पुत्रों ने तप से अपने मन को एकाग्र करके अपनी चित्त शक्ति से ब्रह्मा जैसी चार अलग-अलग सृष्टियाँ उत्पन्न कर डाली और उनकी हर सृष्टि में एक-एक ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्रमा वगैरह सब वस्तुएँ मौजूद थीं। कथा जरा लम्बी है, जो स्थान के अभाव के कारण यहाँ नहीं लिखी जा सकती, मगर विचार की शक्ति का उदाहरण इससे अच्छा दूसरा देखने में नहीं आया है।



जो आज हमारा लड़का है जिसे हमने बड़े लाड़ व प्यार से पाला है— जरा विचार बदलने की देर है वही शत्रु दिखाई देने लगता है— इसे देखकर काल से भी अधिक भय लगने लगता है। 'प्रह्लाद भक्त' की मिसाल आपके सामने है। जिस स्त्री को हम अपना जीवन साथी समझ कर अपनी जान व माल उस पर न्योछावर करते हैं जरा विचार बदलते ही हम उसके खून के प्यासे बन जाते हैं। हमारा सुख और दुःख हमारे अच्छे और बुरे विचारों का समूह है—इसके सिवा कुछ नहीं। एक मनुष्य पुत्र न होने से दुःखी है तो दूसरा पुत्र होने से भी दुःखी है—जरा विचार करो कि यदि सुख दुःख पुत्र में होता तो दोनों ही सुखी या दुःखी होते। मगर यह अन्तर क्यों? केवल इसलिए कि दुःख सुख की जड़ हमारे अपने विचार में है इससे यह परिणाम निकलता है कि बुढ़ापे का सुख दुःख बचान से लेकर लेकर जवानी तक के हालात और ध्यालात पर निर्भर है। जिन-जिन हालात ध्यालात और सोहबत (संगती) में हमने अपना पिछला जीवन व्यतीत कि है हमारा मन वैसा ही बन गया और वही हमारा स्वभाव (आदत) बन कर बुढ़ापे में हमको सुख दुःख दे रहा है।

कहावत है "जैसा अन्न वैसा मन" हम जैसा जैसा भोजन खायेंगे उसका खून मांस बनकर हमारे मन में वैसा ही संकल्प पैदा करेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि हम कीमती बढ़िया या शक्तिदायक भोजन करेंगे वो हमारे विचार अच्छे (शुद्ध) होंगे। ऐसे भोजन से शरीर तो अवश्य शक्तिशाली हो सकता है परन्तु हमारी दृष्टि इस समय शरीर पर नहीं बल्कि मन पर है। इसका बाशय यह है कि हम नेक कमाई का अन्न खायें—परिश्रम करके स्वच्छ जीविका पैदा करें—सूद-खोरी, रिश्वत, निधन-यतीम-विधवा को सता कर उनसे प्राप्त की हुई आमदनी से अपना पेट न भरें—ऐसा अन्न हमारे



मन और विचारों को दूषित कर देगा और जीवन को दुःखद बनाएगा। भोजन शरीर रखने के लिए आवश्यक है, भोजन की तथा भोजन की अधिकता दोनों ही जीवन को नष्ट कर देती हैं। कुछ खाओ सोच समझ कर खाओ, क्योंकि खाना ही एक ऐसी चीज है जिससे स्थूल शरीर बनता है नाड़ियाँ बनती हैं—मन का सूक्ष्म रूप भी इसी भोजन से बनता है और मानों या न मानों हमारे विचार भी बनते हैं। विचार यदि नेक हैं तो मन में पवित्रता ज्ञान-भक्ति का प्रकाश करेगे और यदि बुरे विचार होंगे तो क्रोध, लोभ, मोह अहंकार की जड़ों में पानी देगे और तुम गिर जाओगे।

अब प्रश्न यह उठता है कि भोजन और विचारों पर कैसे काबू (नियन्त्रण) पाया जाय ? इसका उत्तर यह है कि दुनियाँ में कोई काम बिना सीखे नहीं आ सकता हर काम को सीखना ही पड़ता है इसलिए भोजन और विचारों पर काबू पाने के लिए किसी बुजुर्ग कामिल की तलाश करनी होगी। नेक बातें हम प्रतिदिन सुनते और पढ़ते हैं मगर उनको साधारण समझ कर टाल देते हैं उनसे कोई लाभ नहीं उठाते मगर वही बात जब किसी गुरु के अथवा अभ्यासी के मुँह से निकलती है तो दिल में असर कर जाती है और जीवन बदल देती है। इसलिए खुराक और ह्यालात को काबू करने के लिए ऐसे महात्मा या गुरु की सोहबत या शागिदी करनी होगी जो सुरत शब्द अभ्यासी हो जिसकी रूह ऊपर के मण्डलों की सँर करती हो, जिसने अपने मन और इन्द्रियों को काबू में किया हो—सादा रहन-सहन हो जबान में मिठास वाणी में खिचाव, हमदर्द और अपनी निजी कमाई पर निर्वाह करता हो, ऐसे महापुरुषों का संग लिए बिना ये काम पूरा होना दुर्लभ नहीं तो कठिन अवश्य है।

बुढ़ापे में दुःख के दूसरे कारण :—क्रिया और प्रतिक्रिया



(Action and reaction) यह साँसार गुम्बद की आवाज है ।
 यहां हम जो कुछ करते हैं—जो देते हैं वही चीज लौटकर हमारे
 पास वापिस आ जाती है । यह प्राकृतिक अटल नियम है । नेकी
 करेंगे, नेकी मिलेगी, बुराई के बदले बुराई मिलेगी, गाली देंगे, गाली
 खायेंगे, खुशी देंगे, खुशी पायेंगे, शान्ति देंगे शान्ति मिलेगी, हमको
 सोचना यह है कि हमने अपनी जवानी में क्या किया है—यदि लोगों
 की सेवा की है तो बुढ़ापे में हमको अश्रय ही खुशी और
 शान्ति मिलेगी वरन दिल के भण्डार से वही कुछ मिलता रहेगा जो
 हमने जीवन भर उसमें जमा कर रखा है ।

दुनिया में हर चीज सिकुड़ती और फैलती है यह सिकुड़ने या
 फैलने (contraction and expansion) का प्राकृतिक नियम
 एक अटल नियम है । इसी नियम पर मनुष्य का दिल सिकुड़ता भी
 है और फैलता भी है । दिल के सिकुड़ने का नाम स्वार्थ और तास्सुब
 है और फैलने का नाम निःस्वार्थ और रूहानियत है, जवानी में
 आमतौर पर हर इन्सान स्वार्थ में पड़कर तंग-दिल तंग-ख्याल और
 तंगे नजर बन जाता है और इस तंग दिली की वजह से बुढ़ापे में
 उसे दुःख भोगना पड़ता है । इस तंग और छोटे ख्यालों की वजह
 से उसकी दुनिया भी तंग और छोटी बन जाती है उसमें सद्बान्द और
 बदबू पैदा हो जाती है । वह दूसरों के दोष ओर बुराईयाँ देखने का
 आदि हो जाता है । ईश्वर यदि कहीं समा सकता है तो उसका स्थान
 मनुष्य का दिल ही है, जिसने भी ईश्वर को पाया है अपने दिल में
 ही पाया है ।

“जाहिद मेरे गुनाहों को क्या देखता है तू ।

दिल में मेरे खुदा है जरा मेरे दिल को देख ॥”

दिल में तेरे खुदा की खुदाई है ख्याल ।

गाफिल वसीह दिल की जरा इरतफा को देख ॥”



इसलिए चौड़ा दिल, चौड़े ख्याल, चौड़ी नजर बनाने की शिक्षा दी गई ताकि उसे तंगदिली की बिमारी से छुटकारा मिले और चुड़ापे में दुःख की बजाए सुख तथा शान्ति नसीब हो। बुढ़ापा केवल घृणा दुःखदायी हालत ही नहीं बल्कि यह आयु में देव योनि का पर्व भी है इस आयु में आकर कुदरती तीर पर इन्द्रियों को बहकाने वाला जोश खत्म हो जाता है। स्वाभाविक ही भोग वाद से उदासीनता होने लगती है। बुराई की जगह ईश्वर का भय दिल में घर कर लेता है। नदी से हटकर दिल नेकी की तरफ झुकने लगता है। सबको समान दृष्टि से देखने में खुशी का अनुभव होने लगता है। खान-पान पहरान, बोल-चाल, सब बदल जाते हैं। शतान से बदल कर देवता बन जाते हैं। देवताओं की तरह विरादरी पंचायत विवाह-शादी हर अवसर पह बड़ों की आवश्यकता होती है। उनकी मौजूदगी के बिना कोई शुभ काम शुरू नहीं किया जाता। बूढ़ा मनुष्य चाहे मूर्ख भी हो सब उसका आदर ही करते हैं। उससे हमदर्दी की जाती है। बसों, रेलों और भीड़-माड़ से बूढ़ों का विशेष ध्यान रखा जाता है। बूढ़े मनुष्यों को ही राज-दरबार में भी गुप्त भेदों तथा जिम्मेदारियों के काम सौंपे जाते हैं। सुप्रीम कोर्ट के जज, मन्त्री फील्ड मार्शल जैसी उंची पदवियां केवल पके हुए बड़े मनुष्यों के लिए ही रखी जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बूढ़े (First Priority) के हकदार बन जाते हैं। सबसे बढ़िया बात तो यह है कि इनको नींद कम हो जाने के कारण आत्म आत्म-चिन्तन तथा भगवत् भजन करने के लिए एक सुअवसर प्राप्त हो जाता है।

मेरे इस अनुभव का तात्पर्य (अर्थ) यह है कि जो मनुष्य इस भरम भूल में पड़े हुए हैं कि—

“अब तो आराम से गुजरनी है।

आकबत की खबर खुदा जाने ॥”



वे बिल्कुल अन्धकार की ओर जा रहे हैं। क्योंकि बुढ़ापा यदि शानदार और सुखी बन सकता है तो जवानी को सम्भालने से ही बन सकता है। जिस तरह जवानी में दुनियाँ के और काम किए जा सकते हैं या किए जाते हैं, इसी तरह बुढ़ापा और परलोक को सुधारने का काम भी केवल जवानी में ही आरम्भ हो सकता है। अगर गलती या लापरवाही से किसी ने जवानी को यों ही बेकार धन्धों में गुजार दिया तो उसके परलोक का बनना असम्भव तो नहीं बल्कि कठिन जरूर है इसलिए मैं दोबारा अपने पाठकों का ध्यान इस ओर लाना चाहता हूँ कि ऐसा न हो कि वक्त गुजर जाय और आपको सुधार का ध्यान ही न आए। मनुष्य शरीर की प्रशंसा करने में संसार का कोई भी धर्म अथवा मजहब नहीं थकता। अतः शरीर का प्रयोग करना अति आवश्यक है। इसलिए हमको चाहिए कि किसी अनुभवी अभ्यासी महान् आत्मा से मिलकर इस अनमोल रत्न का मूल्यांकन करवाएँ ताकि अज्ञानता के कारण के ये बहूमूल्य हीरा जो बहुत मुश्किल से मिलता है कौड़ियों के भाव न बिक जाय। अगर पाठकों में से किसी एक व्यक्ति ने भी मेरे इस अनुभव का मनन करके अनुसरण किया तो उसका बुढ़ापा अवश्य ही सुखदायक बन जाएगा। और मैं भी समझूँगा कि मैंने अपने सद्गुरु की खूब सेवा कर ली और थोड़ा सा कर्ज उतारने में भी सफल हो गया। सतगुरु आपका कल्याण करें। राधास्वामी।

संगत का दास—

दीवानचन्द आहूजा



गताँक से आगे—

बाचक यह बड़े अन्यायी । अवस्था चौथी सोउ गँवाई ॥२७॥
जोगेश्वर ज्ञानी पिछले । चढ़ मूर्धनी घट खेले ॥२८॥
उन चार अवस्था गई । पंचम कहा चेतन भाई ॥२९॥
चारों से न्यारा गया । ताहि आतम भाखि सुनाया ॥३०॥
इन मूर्धनी घर त्यागा । मन आकाश आतम कह भाखा ॥३१॥
क्योंकर इन कहूँ बुझाई । इन बहुतही धोखा खाई ॥३२॥
राधास्वामी कहत सुनाई । तुम बचियो इन से भाई ॥३३॥

बचन १४

तीन बंदों के उद्देश्य की व्याख्या

दुनियां में जितने काम बुद्धि वाले लोग करते हैं, वह तीन उद्देश्यों से रहित नहीं होते । प्रथम या तो इनमें जीवित बने रहने का उद्देश्य है या बुद्धि की उन्नति से अभिप्राय है अथवा आनन्द प्राप्त करने का प्रयोजन है । जीवन, बुद्धि और आनन्द या सत, चित और आनन्द केवल यही तीन बातें सबकी दृष्टि में रहती हैं । हम बचपन से यही करते और बुढ़ापे तक इन्हीं के पीछे लगे रहते हैं । बच्चों में पूछने की आदत होती है और बुढ़ापे तक वैसी बनी रहती है । जानकारी प्राप्त करने की चाह हमारे स्वभाव में है । बच्चा खाता पीता है । बुढ़ापे तक यही आचरण किसी न किसी सूरत में चला चलता है । जीवन बनाये रखने की इच्छा हमारी घुट्टी में है । बच्चा खुशी से राग और नाखुशी से घृणा रखता है घृणा में भी यही आदत रहती है क्योंकि यह हमारा स्वभाव है ।

यह तीन बातें किस तरह प्राप्त होती हैं यह सवाल है । यह सब किसी विशेष केन्द्र पर ठहर कर उससे मिलाप करने



और उससे काम लेने से प्राप्त होती हैं। केन्द्र पर ठहरने में वृत्तियों को चारों ओर से रोकना है। यह बंद लगाना है और हर तरफ से चित्त को रोककर केवल केन्द्र का उस समय हो रहना यह इससे काम लेना है। जीवन (सत्) बुद्धि (चित्त) और खुशी (आनन्द) के कारोबार में हर जगह यही सिद्धान्त बरता जाता है। चाहे इसे समझ या न समझे, लेकिन हम स्वतः उसे करते ही रहते हैं और बच्चों से लेकर बूढ़ों तक सबमें यह मौजूद है। इसलिये यह बंद भी एक प्रकार का प्राकृतिक सिद्धान्त और प्राकृतिक कर्म है।

विषय ज्ञान, ब्रह्म ज्ञान, विद्या ज्ञान, आदि के ज्ञान हैं। ब्रह्मानन्द, विद्यानन्द, विषयानन्द और ज्ञानानन्द के सम्बन्ध हैं। ब्रह्म सत्ता, विद्या सत्ता, विषय सत्ता आदि प्राप्त करने में हर जगह यही क्रिया व साधन जारी रहता है। स्त्री को केन्द्र बनाकर स्त्री से मिलने में विषय का ज्ञान, आनन्द और सत्ता प्राप्त होती है। ब्रह्म को केन्द्र बनाकर आनन्द और सत्ता प्राप्त होती है। ब्रह्म को केन्द्र बनाकर ब्रह्म से मिलने में ब्रह्म का ज्ञान, आनन्द और सत्ता प्राप्त होती है। विद्या को केन्द्र बनाकर विद्या के मिलने में विद्या का ज्ञान, आनन्द और सत्ता की प्राप्ति होती है। जब तक किसी को केन्द्र बना कर उससे न मिला जायेगा तब तक उसके ज्ञान, आनन्द और सत्ता का भान न होगा। यह प्रमाणित सिद्धान्त है।

केन्द्र बनाने के लिये मन को बंदिश या निरोध में लाना पड़ता है और इन्द्रियों पर भी रुकावट लगाई जाती है। रोक (बंद) लगाने से एकाग्रता आती है अभिप्राय यह है कि चित्त की वृत्तियां समय पर केवल उसी से संबंध रखें दूसरी ओर न जाने पायें क्योंकि अगर यह बिखर गई और



ध्यान बँट गया तो फिर उस उद्देश्य की प्राप्ति में असफलता होगी।

इस अवस्था के पैदा करने के लिये पहले मन को नकारात्मक (नेति) विचारों से रहित और सकारात्मक (एति) विचारों से भरना पड़ता है। फिर एक विशेष ढंग पर अपने शरीर को स्थित करना पड़ता है और बलपूर्वक उसे केन्द्र पर टहराना होता है। ठहर कर उसमें आनन्द होता है और उसके मिलाप में उस जैसा हो जाना, उससे मिलकर एक हो रहना और उसके मिलाप में अपने अहंकार और आनन्द को खो देना पड़ता है। इस अवस्था का नाम समाधि है।

महर्षि पातंजलि के योग में इन्हीं बातों को अष्टांग योग का नाम दिया गया है। हर मनुष्य को अधिकार है कि वह अपने ढंग पर ध्यान करके देखे कि यह समस्त आठों बातें हर तरह के अभ्यास और साधन में रहती हैं या नहीं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, इनका काम हर जगह पड़ता है। कर्म में, उपासना में और ज्ञान में भी इन्हीं पर अनजाने चलना पड़ता है। व्यवहार, प्रतिभास और परमार्थ में हर जगह यही काम हुआ करते हैं। यहाँ तक कि अगर ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाये तो जिसे हम अज्ञान और अहंकार कहते हैं उसके कारोबार में भी यही आते जाते हैं। सिद्धांत तो सिद्धांत ही है। उससे खाली कौन रहता है। नौकरी, कला कौशल और जीवन की हर क्रिया में यह शामिल होकर काम करते हैं। केवल इतना समझाना है कि योग प्राकृतिक क्रिया है। मनुष्य तो मनुष्य ही है पशुओं में भी यह मौजूद है। यहाँ कोई बात ऐसी नहीं है जिसे हम अप्राकृतिक कहें। हाँ, बुद्धि की कमी, अनुचित कार्य और भ्रम या मिथ्या बोध दूसरी बात है।



आशा है कि इस भूमिका से अब बंद लगाने की समझ किसी अंश तक आ गई होगी ।

राधास्वामी मत में सुरत शब्द योग के अभ्यास के लिये केवल तीन इन्द्रियों के बन्द लगाने की शिक्षा दी गई है और इन इन्द्रियों के बन्द लगाने के क्रम में स्वयं मन पर बंद लग जाता है. क्योंकि इन्द्रियां मन की बैठक और उसके काम के साधन हैं ।

अब जिभ्या, आँख और कान पर बंद लगाने को और भी स्पष्ट कर देते हैं ताकि उसके आशय के समझने में सुगमता हो और कोई मनुष्य गलती में न पड़े ।

जिभ्या को विशेष प्रकार का ख्याल (संस्कार) विशेष नाम की सुरत में दिया जाता है ताकि वह उसी की याद करती रहे मगर बाहरी जिभ्या से काम लेना ध्येय नहीं है । आन्तरिक जिभ्या से सम्बन्ध है । कलियुग में नाम ही से मुक्ति होती है । यह हमारे शास्त्र भी कहते हैं । यह नाम वास्तव में क्या है । यह इष्ट है । यह इष्ट पद है । यह धुर पद की शक्ति रखने वाली शब्द शक्ति है । इसके सुमिरन करने से उसी विशेष ख्याल या संकल्प का स्मरण होता रहता है और मन में उस विशेष संकल्प (या ख्याल) पर एकाग्र होने की तरकीब हाथ आ जाती है । नाम अपने इष्ट का सुमिरन कराता हुआ मन को उसी में स्थित और लय होने की सूझ समझाता रहता है । संकल्प प्रधान है और सब सहायक है । नाम सुमिरन कराने और कल्पित रूप से विशेष संकल्प के भावों के उभारने का साधन है ।

संकल्प कहां अधिक वेग के साथ उभरता है ? यह दशा उस संकल्प के केन्द्र या मंडल में अधिक सम्भव है बाग के



शब्द से बाग का तो ज्ञान हो जाता है मगर मानसिक प्रललता और बाग का आनन्द बाग में मिलेगा। राधास्वामि... मत इस कारण से इस नाम लेने को जगह इस शरीर में स्थापित करता है। वह यों ही शिक्षा नहीं देता कि ऊटपटांग नाम लिया जाये। उटपटांग और बिना ठौर ठिकाने के नाम लेने से मानसिक भावों को फुरना नहीं मिलती और न कोई निश्चयात्मक सफलता मिलती है। किसी नाम वाले के स्थान पर जाकर उसका नाम लेने से उस पर प्रभाव पड़ेगा। बिना स्थान पर पहुँचे नाम लेना व्यर्थ होता है। यह स्थान तुम्हारे और हमारे शरीर में है। इसका पता पहले पूछलो। तब वहाँ पहुँच कर नाम लेकर पुकारो। यह पहली बात है और यह जिभ्या का बन्द है। जिभ्या बाहर बाहरी तौर पर नाम नहीं लेती। अन्तर में उसका प्रबन्ध किया जाता है। यह अजपा जाप है।

दूसरी बात यह है कि हर नाम वाले का रूप होता है। जहाँ नाम होगा, वहाँ उस नामी का रूप भी होगा। नाम और रूप साथ साथ चलते हैं। बिना रूप के नाम नहीं। जिसका रूप ही नहीं है उसका नाम क्या होगा और जिसका नाम ही नहीं है उसका रूप क्या होगा। जब नाम है तो नामी का भी रूप होना चाहिये। जब रूप है तब उस रूप को देखना भी चाहिये। रूप के देखने ही का नाम ध्यान कहलाता है। पहले इसका खास केन्द्र पर ध्यान करके नाम लेते हुये उसके रूप के देखने की इच्छा को फुरना देनी चाहिये ताकि प्रत्यक्ष होने का अवसर हाथ आये और उसको देखते हुये उसी में प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि की अवस्थायें प्राप्त करना चाहिये। यह आंख पर बन्द लगाने का ध्येय है। आंख बाहर तो बंद है। अंतर में अब प्रबल इच्छा वश उसे देखती हुई उसी में लय



हो जाती है। और उसके ज्ञान, आनन्द और सत्ता का लाभ उठाते हुये उसी की हो रहती है। यह दूपरा बंद है।

तीसरी बात यह है कि प्रत्येक जीवित शरीर के जीवन का कारोबार उसके नस नाड़ियों की गति से प्रकट होता है। जहाँ गति होती है, वहाँ आवाज अवश्य होगी। यह आवाज उसकी असलियत है। तुम्हारा जीवन स्वयं क्या है? नस नाड़ियों की गति और आवाज ही तो है। इसके अतिरिक्त वह और क्या होता है। कानों को बाहर की आर से मोड़कर अन्तर की ओर जोड़ना और इस विशेष आवाज को सुनना कानों पर बन्द लगाना है। यह आवाज भी खास केन्द्र या चक्र पर सुनी जाती है अगर कानों को केन्द्र पर न लगाया जाये तो ठीक ठीक उसका ज्ञान, उसका आनन्द और उसकी सत्ता का भान न होगा। इस आवाज को सुनते हुये उसके ज्ञान, आनन्द और सत्ता में लय होने की अवस्था धीरे धीरे आती है और इस अभ्यास से भी वह अवस्था मिल जाती है। जो समाधि कहलाती है आकर्षण आंखों में भी है और आकर्षण आवाज में भी है। जादू का अमल तीन तरह पर होता है। या तो मन के संकल्प की धार से असर डालने पर या आँख से देखने पर या आवाज और शब्द सुनाने पर। यह तीन ही उपाय अधिकतर जोरदार होते हैं। किसी की ओर बार बार मन के संकल्प को भेजो। वह तुम्हारी ओर आकर्षित होगा। किसी को बार बार देखो। वह आंखों की चुम्बकीय शक्ति के वश में आजायगा। किसी को आवाज, शब्द या मन्त्र सुनाओ वह आकर्षित होगा। इन सबमें शक्ति है मगर शब्द की शक्ति सबसे अधिक होती है और वह मन को खींचकर अपनी ओर आकर्षित कर लेती है जैसा कि सितार, बांसुरी, और बोन आदि बाजों की आवाज का प्रभाव होता है किन्तु वह



आंखों की शक्ति की अपेक्षा अधिक बलशाली होता है। इस कारण से राधा स्वामी योग का नाम सुरत शब्द यांग रखा गया है क्योंकि अधिक बल इस शब्द की परिपूर्णता होने ही में दिया गया है। यह कानों पर बन्द लगाने का प्रयोजन है।

हम इन तीनों प्रकार के मिले जुले अभ्यास से अपने आप को किसी खास केन्द्र, केन्द्र के धनी और उस धनी के स्वरूप में अपने आपको लगाकर उसके ज्ञान आनन्द और सत्ता के इच्छुक होते हैं और उन्हें पाकर उसमें अपने अहंकार को लय कर देते हैं। इस कारण से यह शिक्षा इस ढंग में दी गई है।

— x —

चवन ११५

केन्द्र की विशेष व्याख्या

चाहे केन्द्र (चक्र) से आशय कुछ भी हो, मगर उससे हमारा आशय समझने में आसानी होगी। पिंड के छः चक्रों के वर्णन में हमने मानव शरीर के अन्दर प्रकृति की विभिन्न स्थूल (भौतिक) और आत्मिक शक्ति के स्थान बताने की कोशिश की है। उनसे यह समझ में आ जायगा कि हमारा आशय क्या है।

प्राचीन काल में लोग इन षट् चक्रों को बीधते हुये योग साधन करते थे, जो अपने ढंग पर बड़ा कठिन था और उसका कोई इतना लम्बा चौड़ा आत्मिक लाभ भी नहीं होता था। सत पुरुष राधास्वामी साहब ने उनका पूर्ण रूपेण निषेध



कर दिया। राधास्वामी मत में जो मुरत शब्द योग का अभ्यास बताया जाता है वह ब्रह्मांड से शुरू किया जाता है, क्योंकि ब्रह्मांड में असलियत है। यह ब्रह्मांड हमारे सिर में है अर्थात् जिस तरह हमारे शरीर में भौतिक स्थूल पदार्थ के षट् चक्र विद्यमान है, उसी तरह ब्रह्मांड के स्थान भी इस दिमाग में है। जितनी कुदरती शक्तियाँ हैं, वह सब सिर ही में रहती हैं और सिर से उनका उतार होता हुआ धार की शक्तियों में शरीर के निचले मंडल में उनका व्यौहार होता है। इस दृष्टि से यदि सिर ही के किसी चक्र पर अभ्यास कराया जाये तो प्रथम तो उसका प्रभाव शीघ्र होगा, दूसरे प्रत्यक्ष होने के कारण आगे के स्थानों के तै करने में आसानी होगी। आदमी जब तक अपने काम का कोई नतीजा नहीं देखता तब तक उसके विश्वास में दृढ़ता नहीं आती।

हमने पहले किसी बचन में समझा दिया है कि प्रत्येक वस्तु के ज्ञान के लिये उससे वृत्ति जोड़ने और वृत्ति को उस रूप के आकार वाली बनने की आवश्यकता है। जब तक वृत्ति किसी वस्तु के रूप का आकार नहीं बनती, तब तक उसकी सत्ता उसके ज्ञान और उसके आनन्द का भान नहीं होता। अब जब कि हमको मालूम हो गया है कि हमारे मस्तिष्क में अमुक स्थान अमुक शक्ति या अमुक देवता का स्थान है तो अपनी वृत्ति को उसी विशेष स्थान पर ले जा कर उससे जोड़ना चाहिये और यह कोशिश करनी चाहिये कि हम उममें लय हो जायें। तब उसकी शक्ति और सूक्ष्मता हम में आयेगी।

इस वृत्ति के सिमटाने में रेचक, पूरक और कुम्भक की तीनों ही क्रिया होंगी। वृत्ति वहाँ पहुँच कर उसमें जुड़ेगी, यह पूरक है, उमसे अलग होगी यह रेचक है और जुड़कर उसका आकार बनकर उसमें लय होगी, यह कुम्भक है।



बिना इस अमल या साधन के यकायक उसमें अधिक देर तक जुड़कर कुंभक का आना असम्भव होगा। यह तीनों अमल जिस तरह सांस लेने में किये जाते हैं वैसे ही यहां पर भी होता है। इसी कारण से पहले प्राणायाम की शिक्षा देने का नियम था मगर कठिनता यह है कि लोग प्राणायाम तो करते हैं और उसी को महत्व भी देते हैं, लेकिन मन के मानसिक जाप की असलियत को नहीं समझते। नतीजा यह होता है कि रूहानियत (अध्यात्म) नहीं आती है। इस कारण से राधा स्वामी मत ने मानसिक जाप को प्राणायाम पर विशेषता दी है और सुमिरन, ध्यान और भजन को त्रिपुटी के रूप में स्थापित किया है ताकि सुगमता भी हो और उसका आनन्द भी प्राप्त हो।

—0—

वचन ११६

पिंड की चोटी पर साधन

पिंड की चोटी तीसरा तिल है। यह तीसरा तिल षट्चक्रों का सत्यम् या सातवाँ स्थान है षट् चक्रों की जड़ इसी में है। इसी की धार उन नीचे स्थानों की शक्ति देती रहती है और वे उसी की सत्ता को पाकर जीवित रहते और फुरते रहते हैं। इस दृष्टि से इस स्थान के साधन से अपने आप बिना किसी बाधा के नीचे के स्थानों के अभ्यास का फल भी इसी जगह के अभ्यास से मिला रहता है। यह पिंड में असली स्थान है और पिंडी आत्मा के रहने का स्थान है। सूफी इसी को नुक्तये सुवेदा कहते हैं। यह तीसरा तिल सहस्रदल कंवल से मिला हुआ है जो विराट पुरुष का स्थूल रूप है।



यहाँ अभ्यास करने से आँखों की दोनों पुतलियाँ उलट जाती हैं। मन की चेष्टा ऊँचे की ओर चली जाती है। पहिले समय में लोग पुतलियों को उलटने और उनको तीसरे तिल के चक्र पर जमाने के लिए त्राटक का अभ्यास करते थे। त्राटक का अभ्यास नाक के सिरे को दोनों आँखों से लगातार देखना है। जो कोई व्यक्ति थोड़ी देर भी यह साधन कर ले तो उसकी आँखों में स्वयं पुतलियों के उलटने की शक्ति आ जायेगी और पुतलियों के एक रुख होते ही उनमें ऊपर की ओर आकर्षित होने की इच्छा स्वयं पैदा हो जायेगी और एक प्रकार की मस्ती आ जायेगी। लेकिन कठिनता तो यह है कि असलियत के ज्ञान और साधन का प्रयोजन हृदयांकित नहीं कराया जाता है। जो व्यक्ति जहाँ ठहरा वहाँ ही ठहर गया। आगे के बढ़ने का भेद भी न तो उसे बताया गया और न स्वयं उसने अपने निज अनुभव से लाभ उठाकर अन्तरमुखी बनने के रहस्य को समझा। राधास्वामी मत ने इसको भी जान बूझकर हटा दिया और अभ्यासियों को असली मतलब समझा दिया कि बाहर की ओर नाक पर चित्त की वृत्ति जमाने के बदले तुम पहिले ही से पुतलियों को उलट कर तीसरे तिल में अन्दर की ओर जमा दो और त्राटक का उद्देश्य आप ही आप पूरा हो जायेगा।

तीसरे तिल को शाक्तिक या शिव धर्म में रुद्र की आँख या भगवान शिव का तीसरा नेत्र कहते हैं। यह भगवान शिव को वह आँख है जिसके विषय में पुराणों में वर्णन है कि उसके खुलते ही कामदेव जलकर भस्म हो गया था। कहानी कहानी ही है। कहानी में दिलचस्पी रहती है और इस दिलचस्पी के सिलसिले में किसी किसी को असलियत को समझ आजाती है। कोई कोई अज्ञानता में पड़ कर उसी में

अटका रहता है। अभिप्राय यो यह है कि यदि यह साध
विधिपूर्वक बन आवे तो निचले उद्वेग या भाव जिसका साग
हिक नाम काम है सिमट कर इस जगह आजायेंगे और सिमट
के कारण उनका वेग जाता रहेगा और एकाग्र होने की शक्ति
अभ्यासो में आ जाजायेगी।

आँखा में बड़ी शक्ति है। आँखों में ही जादू है। आँख
देखे जाने वाले (दृश्यवान) का ध्यान तुरन्त अपनी ओर
खँच लेती है। अंधी तस्वीर प्रभाव नहीं डालती। आँखों वाली
तस्वीर देखने वाले को तुरन्त ही अपनी ओर आकर्षित कर
लेती है। इस शरीर में जो कुछ है वह आँख है। साधारण
से साधारण आदमी उसकी मुख्यता को जानता है। उसमें
रसायनिक प्रभाव है, जो किसी आदमी के दिल को तोड़ने,
घायल करने और उसके जोड़ने की शक्ति रखती है। इसी से
प्यार प्रीति प्रकट की जाती है जिसे सहानुभूति कहते हैं।
इसी से घृणा का व्यवहार किया जाता है जो दिलाजारी या
हिंसा कहलाता है। यदि मनुष्य कुछ न करे, केवल आँखों ही
के एकाग्र करने के उपाय से काम ले तो उसमें विशेष प्रकार
की शक्ति बढ़ जायेगी। इस जगह वृत्ति को ठहरा कर वह जिस
व्यक्ति से जो बात कहेगा उसका प्रभाव तुरन्त ही उस पर
होगा। आँखें दिल के पर्दों को फाड़ करके उनके अन्दर गढ़
जाती है और अपनी जगह बना लेती हैं। आँखें मनुष्य के
दिल को बँचाने करके उसकी निराश और व्याकुल कर देती हैं।
शुभ दृष्टि और कुदृष्टि के प्रभाव को सब ही जानते हैं। इनमें
गर्मी और तरावट दोनों ही रहती हैं और गर्मी और सर्दी का
प्रभाव पैदा कर देती हैं। पुराणों में एक ही नहीं किन्तु
बहुत सी कथाएँ ऐसी आती हैं जिनसे पता चलता है कि आँखें





से देखने पर आदमी और वृक्ष आदि क्षण मात्र में जल उठे और भस्म हो गये। कपिल में चूँकि दृष्टि साधन की निपुणता थी उन्होंने सगर की संतान को भस्म कर दिया और उसी निपुणता के कारण उन्होंने भगीरथ को अपनी सहानुभूति का वह भाग प्रदान किया कि जिसकी सहायता से उसने गंगा को खोद लाने का कठिन काम अपने जिम्मे ले लिया। यह कथा चाहे जैसी हो किन्तु नेत्रों की शक्ति पर बहुत प्रभावशाली प्रकाश डालती है और हमको तो केवल इनके अध्ययन से शिक्षा ही लेनी है।

इसी दृष्टि साधन के आधार पर तांत्रिक अर्थात् तंत्र शास्त्र के अमल करने वाले मारण मोहन और उच्चाटन के भाव अपने अन्दर पैदा करके दूसरों पर प्रभाव डालते थे। आँख मार देती है। आँख दूसरों का मन अपनी ओर खेंच लेती है। आँख किसी परायेपन की दृष्टि से देखकर उसका मन उचाट कर देती है। इनमें से कोई बात गलत नहीं है। हाँ, जो करते हैं उन्हें ज्ञान होता है। जो नहीं करते वे अनजान बने रहते हैं मगर बात सच्ची है और ऐसी सच्ची है कि प्रत्येक व्यक्ति इसे करके स्वयं देख सकता है।

राधा स्वामी मत चूँकि अहिंसा और प्रेम का मार्ग है, वह गुरु के प्रेम की शिक्षा के सिलसिले में इस दृष्टि साधन का प्रमल सिखाता है ताकि कोई अभ्यासी भूल कर भी किसी दूसरे की हानि न कर सके किन्तु यथा शक्ति इन सब बातों की जानकारी रखते हुए वह अपनी शक्ति से अपने ही अंदर गम ले और अपनी इच्छा शक्ति की पूर्ति से अपने ही स्थूल शरीरों को ध्यान की एकाग्रता से सूक्ष्म बनाता हुआ इनका ज्ञान ऊँचे की ओर रखे ताकि वह उसकी अपनी आत्मिक प्रति में सहायक बने रहें और वह बहिर्मुखी न होने पावे



यदि मनुष्य ध्यानपूर्वक अनाय्य (गैर आर्य) धर्म के देवताओं के चित्र को देखें तो उनकी आँखों को ऊपर की ओर चढ़ी हुई पायेगा। इसी प्रकार जो लोग सच्चे हृदय से प्रार्थना करते हैं उनकी भी पुतलियाँ अन्दर की ओर चढ़ जाती हैं।

गहरी समस्याओं के सोचते समय भी यही दशा हो जाती है और आँखों के समेटने से एकाग्रता और लय अवस्था आ जाती है। सोते समय यदि आँखों की यह दशा न हो तो नींद का आना कठिन हो जाय। आँख समेटते ही कड़वाने लगती हैं। तब नींद आ जाती है। कोई कहाँ तक कहे, यह सच्ची घटनायें हैं। स्थूल शरीर के भान बोध न रखने वाले पुरुषों की आँखें भी चढ़ी रहती हैं। लेकिन चूँकि जन साधारण में से किसी को इसका ज्ञान नहीं होता, उस पर अद्विक बहस करना व्यर्थ है।

सारांश यह है कि आँखों के उलटने और दृष्टि साधन का अमल करने से मनुष्य में सच्ची एकाग्रता और एकदिली आ जाती है। इस दृष्टि से सूरत शब्द योग के साधन कराने में इस क्रिया को आवश्यक समझा जाता है।

यह दृष्टि साधन आ प्रयोजन और आशय है।

पहले दृष्टि को अंतर की ओर फेरो। आदर्श के ख्याल को जो सुमिरन कहलाता है मन दो। फिर अन्तरीय साक्षात्कार अर्थात् ध्यान शक्ति को सहारा देकर अपने अंदर उस दृश्य को देखो जिसकी शिक्षा गुरु देते हैं और साथ ही उस विशेष शब्द या शब्दों को उसी जगह सुनने का साधन करो जो वहाँ से सोते के जल की भाँति उबलते हुए सुनाई देते हैं।



वचन ११७

दृष्टि साधन

हम बाहर दूसरों पर यह अमल प्रायः करते रहते हैं और उसका फल भी देखते हैं। एक लड़का है जो देखने में दुबल है। उससे पत्थर उठाने को कहा गया है वह घबराता है। अपने में बल नहीं पाता। किसी सहानुभूति हृदय वाले ने उसे प्रेम की दृष्टि से देखा। उत्साहजनक बातें कीं, इसकी दृष्टि वाणी और हृदय से सहानुभूति की शक्ति का साहस पाकर उस लड़के ने अनजाने अपनी चित्त की वृत्तियों को अपने अंदर समेटा। अब तुम देख सकते हो कि इस प्रकार सोचते समय उसकी क्या दशा होती है। कुछ न करो, केवल उसकी आँखों की देखो। उसकी पुतलियां स्वयं ऊपर की ओर खिंचने लगती हैं। यह खिंचकर कहां जाती हैं इसे तुम नहीं जानते हो। उसी के तीसरे तिल में अनजाने स्थिर हो जाती हैं। यहाँ वह एकग्र होकर अपने अंदर से शक्ति की धार को खींच कर हाथों में स्थापित कर लेता है और पत्थर को उठाकर फेंक देता है। तुम इसी एक उदाहरण पर विचार करो तो तुमको बहुत सी बातें ज्ञात हो जायेंगी।

दृष्टि साधन में बाहर से सहायता ली जाती है और अंदर से भी। इस लड़के ने बाहर तो उस सहानुभूति करने वाले की जिद्दा और हृदय से सहायता ली और अपने अन्दर अपने ही से सहायता लेकर उस काम को कर लिया।



